



कुपोषण मुक्त भारत जीवन-चक्र दृष्टिकोण और संस्थागत रणनीतियां

कुपोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली समस्या है। इसलिए, तमाम प्रयासों के बावजूद, जब तक योजनाओं और कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन के साथ-साथ जीवन के हर चरण पर ध्यान नहीं दिया जाएगा, तब तक अपने लक्ष्य को हासिल करना मुश्किल हो सकता है।

भारत में चार दशकों से अधिक समय तक सार्वजनिक स्वास्थ्य से जुड़ी चर्चा मुख्य रूप से बीमारियों पर नियंत्रण तक सीमित रही। इसमें मृत्यु दर को कम करना, बीमारियों के उन्मूलन के लक्ष्य और अलग-अलग बीमारियों को लक्षित करने वाले विशेष, रोग-विशिष्ट कार्यक्रम शामिल थे। शुरुआती दशकों में यह दृष्टिकोण काफी प्रभावी रहा, क्योंकि उस समय भारत पोलियो, चेचक, नवजात शिशुओं में होने वाले टिटनेस और गिनी वर्म जैसी बीमारियों से जूझ रहा था। हालांकि, अब सामुदायिक चिकित्सा काफी आगे बढ़ चुकी है। इसका ध्यान केवल अलग-अलग बीमारियों को रोकने तक सीमित नहीं है, बल्कि अब पूरी आबादी, खासकर कमजोर और संवेदनशील वर्गों के स्वास्थ्य और कल्याण को सुनिश्चित करने पर है। तीन दशकों से अधिक लंबे अपने कार्यकाल में मैंने सामुदायिक चिकित्सा के इन दोनों अलग-अलग दौर को देखा है। पिछले छह वर्षों से सरकार से बाहर रहकर इस क्षेत्र को देखने के बाद मेरा अनुभव है कि यह बदलाव जरूरी भी है और कुछ क्षेत्रों में अभी अधूरा भी है।

एनीमिया अभियान: 6×6×6 से 7×7×7 रणनीति तक

एनीमिया की तरह कुछ ही स्वास्थ्य संकेतक इस अधूरे स्वास्थ्य एजेंडे की तस्वीर इतनी स्पष्टता से पेश करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के वर्ष 2019 के वैश्विक अनुमानों के अनुसार, प्रजनन आयु की महिलाओं में एनीमिया के मामलों के लिहाज से भारत दुनिया में पांचवें स्थान पर था। इसी दौरान, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-5 (एनएफएस-5) (2019 से 2021) के अनुसार भारत में प्रजनन आयु वर्ग की 57 प्रतिशत महिलाएं एनीमिया से प्रभावित थीं। एनएफएस-4 में यह आंकड़ा 53 प्रतिशत था। इसके अलावा छह से 59 महीने की उम्र के 67.1 प्रतिशत बच्चे भी एनीमिया से पीड़ित पाए गए। पांच साल पहले यह आंकड़ा 58.6 प्रतिशत था। यानी इसमें भी काफी बढ़ोतरी हुई है।

इसी पृष्ठभूमि में भारत ने एनीमिया मुक्त भारत अभियान को फिर से शुरू करने का फैसला किया। इस फैसले पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है। जून 2026 में केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण परिषद की 16वीं बैठक के दौरान इस अभियान के लिए नए संचालन दिशा-निर्देश जारी किए गए। इन दिशा-निर्देशों के तहत पहले की 6×6×6 रणनीति को बदलकर 7×7×7 प्रारूप अपनाया गया है। इसमें जन्म के समय कम वजन वाले शून्य से छह महीने के शिशुओं को सातवें लाभार्थी समूह के रूप में जोड़ा गया है। इसके अलावा, 'सही खान-पान' को सातवीं प्रमुख पहल के रूप में शामिल किया गया है। निगरानी और मूल्यांकन व्यवस्था को मजबूत करना इसका सातवां संस्थागत स्तंभ बनाया गया है। एक और महत्वपूर्ण बदलाव टी3 रणनीति से टी4 रणनीति की ओर बढ़ना है। टी3 जांच, उपचार और परामर्श था। अब इसमें निगरानी को भी शामिल किया गया है। इसके अलावा, एनीमिया से बचाव के लिए केवल नियमित रूप से आयरन आदि देने के बजाय अब उपचार और मरीज की स्थिति के आधार पर प्रबंधन पर अधिक जोर दिया गया है। गंभीर और उपचार का असर न होने वाले मामलों में नस के जरिए आयरन देने की चिकित्सा भी इसमें शामिल की गई है।

ये बदलाव निश्चित रूप से स्वागतयोग्य हैं। लेकिन इससे उन बातों की भी पुष्टि होती है, जिन्हें 2010 के दशक में नीति-निर्माता बार-बार रेखांकित करते रहे हैं। भारत के सूक्ष्म पोषक तत्वों से जुड़े कार्यक्रमों की समस्या केवल दवाओं और पोषक तत्वों की आपूर्ति से जुड़ी नहीं है, बल्कि बड़ी चुनौती यह है कि उपलब्ध कराई गई चीजों को लोगों तक पहुंचाने के बाद उनका वास्तविक सेवन सुनिश्चित नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए, साप्ताहिक आयरन और फोलिक एसिड सप्लीमेंट कार्यक्रम दो दशकों से अधिक समय से चल रहा है। इसमें कई बार वितरण का स्तर 80 प्रतिशत से अधिक रहा है, लेकिन

स्वतंत्र मूल्यांकनों में पाया गया है कि वास्तविक सेवन की दर कई बार 20 प्रतिशत या उससे भी कम रही है। यह अंतर राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-6 (2023-24) के बाद और महत्वपूर्ण हो गया है। पहली बार तीन दशकों से अधिक समय में सर्वेक्षण के तथ्य-पत्र में हीमोग्लोबिन के आधार पर एनीमिया के आंकड़े शामिल नहीं किए गए। इसके पीछे यह कारण बताया गया कि पहले अपनाई गई 'उंगली से रक्त लेने की पद्धति' से एनीमिया की स्थिति वास्तविक से अधिक दिखाई देती थी। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय ने संकेत दिया है कि अधिक सटीक आंकड़े भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आईसीएमआर) के आहार और बायोमार्कर सर्वेक्षण के माध्यम से उपलब्ध कराए जाएंगे। जब तक यह नया आंकड़ा उपलब्ध नहीं होता, तब तक 'जननी' (जननी सुरक्षा योजना और जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम) के साथ आरबीएसके और यू-विन पोर्टल को आपस में जोड़कर बनाई गई कार्यक्रम की डिजिटल व्यवस्था ही यह पता लगाने का मुख्य और सक्रिय माध्यम है कि भारत में एनीमिया कम हो रहा है या नहीं। इस स्थिति में आंकड़ों की शुद्धता और विश्वसनीयता का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

पहले 1,000 दिन: विकास की स्वर्णिम खिड़की

एनीमिया के साथ-साथ बौनापन (स्टंटिंग) भी आज सामुदायिक चिकित्सा के क्षेत्र में अधूरे रह गए प्रयासों को दर्शाने वाली एक महत्वपूर्ण स्थिति है। ये दोनों समस्याएं एक-दूसरे से गहराई से जुड़ी हुई हैं। इनसे निपटने के लिए सबसे महत्वपूर्ण समय जीवन के पहले 1,000 दिन हैं। इसमें मां की गर्भावस्था के लगभग 270 दिन और बच्चे के जीवन के पहले 730 दिन यानी दो साल शामिल हैं। इस अवधि में बच्चे के मस्तिष्क, रोग प्रतिरोधक क्षमता और शरीर की चयापचय (मैटाबोलिक) संबंधी संरचना का तेजी से विकास होता है। पहले तीन वर्षों में मस्तिष्क का लगभग 80 से 90 प्रतिशत विकास हो जाता है। यही कारण है कि सभी अच्छे उद्देश्य से चलाए जा रहे

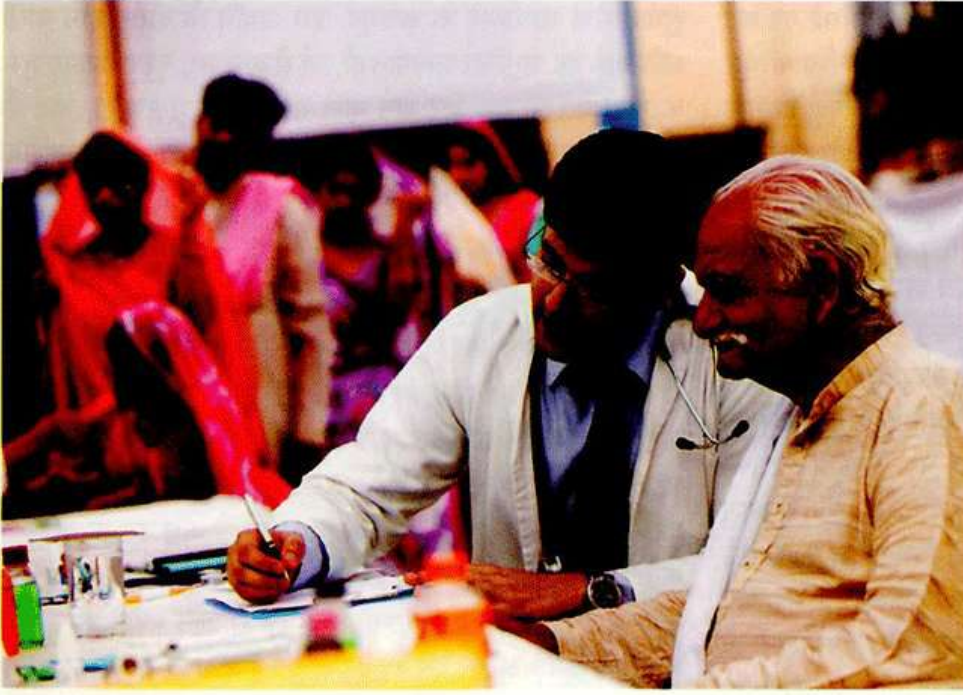
सुधारात्मक कार्यक्रमों के बावजूद, इस अवधि के दौरान होने वाली क्षति चाहे वह अनुचित स्तनपान हो, मां में कुपोषण, पूरक आहार शुरू करने में देरी या बार-बार होने वाले संक्रमण के कारण हो, बाद के वर्षों में आमतौर पर पूरी तरह ठीक नहीं हो पाती या केवल आंशिक रूप से ही ठीक हो पाती है।

इस दिशा में तात्कालिकता इसलिए भी है क्योंकि एनएफएचएस-6 के आंकड़ों में बच्चों में बौनेपन की स्थिति में उत्साहजनक सुधार दर्ज किया गया है। एनएफएचएस-5 में जहां 35.5 प्रतिशत बच्चे बौनेपन से प्रभावित थे, वहीं एनएफएचएस-6 में यह आंकड़ा घटकर 29.3 प्रतिशत रह गया। इसी तरह गंभीर दुबलेपन की दर 7.7 प्रतिशत से घटकर 5.2 प्रतिशत हो गई है। कम वजन वाले बच्चों की दर भी घटकर 31.8 प्रतिशत रह गई है। छह महीने से कम उम्र के बच्चों में केवल मां का दूध पिलाने की दर 95.6 प्रतिशत तक पहुंच गई है, जो एक सराहनीय उपलब्धि है। इसी तरह छह से आठ महीने की उम्र में बच्चों को ऊपरी आहार देने की दर भी 45.9 प्रतिशत से बढ़कर 59.5 प्रतिशत हो गई है। इन सुधारों का श्रेय आंगनवाड़ी व्यवस्था, पोषण अभियान, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना और मिशन इंद्रधनुष के बीच बेहतर समन्वय को दिया जा सकता है। हालांकि, अब भी छह से 23 महीने की उम्र के केवल 15.3 प्रतिशत बच्चों को पर्याप्त और संतुलित आहार मिल पाता है। वहीं, पांच साल से कम उम्र के लगभग हर तीन में से एक बच्चा अब भी बौनेपन से प्रभावित है। यह स्पष्ट संकेत है कि योजनाओं और कार्यक्रमों की पहुंच बढ़ने के बावजूद, पहले 1,000 दिनों में बच्चों को पर्याप्त मात्रा में विविधतापूर्ण, बार-बार और उनकी उम्र के अनुरूप भोजन उपलब्ध कराने की जरूरत पूरी तरह पूरी नहीं हो पाई है जिसकी 1,000 दिनों की इस महत्वपूर्ण अवधि के दौरान आवश्यकता होती है। इस दिशा में उपलब्ध प्रमाण स्पष्ट है कि जीवन के पहले 1,000 दिनों में निवेश किया गया एक रुपया भी आगे चलकर व्यक्ति के स्वास्थ्य, शिक्षा और जीवनभर की आर्थिक क्षमता के रूप में कई गुना लाभ दे सकता है।

सिर्फ पोषण नहीं, थेरेपी भी जरूरी

इसके अतिरिक्त, एक और महत्वपूर्ण पहलू है, जिसे सामुदायिक चिकित्सा के क्षेत्र में अभी तक समग्र दिशा-निर्देशों के रूप में औपचारिक रूप नहीं दिया गया है। शुरुआती जीवन में कुपोषण से बच जाने वाले कई बच्चों में संज्ञानात्मक और विकास संबंधी समस्याएं बनी रह सकती हैं। ऐसी स्थिति को भारत में दिव्यांगता के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयासों की तरह ही गंभीरता से लेने की जरूरत है। यदि पोषण पुनर्वास को शुरुआती उम्र में बच्चों के विकास को





इससे भारत पर कुपोषण का दोहरा बोझ का दबाव और बढ़ गया है, जो एनएफएचएस-6 में जीवन के दोनों छोर पर दिखाई देता है। जहां बच्चों में कुपोषण की स्थिति में सुधार हो रहा है, वहीं वयस्कों में मोटापा तेजी से बढ़ा है। 15 से 49 वर्ष की महिलाओं में मोटापे की दर 30.7 प्रतिशत हो गई है, जो एनएफएचएस-5 में 24 प्रतिशत थी। पुरुषों में भी यह दर केवल पांच वर्षों में 22.9 प्रतिशत से बढ़कर 27.3 प्रतिशत हो गई है। भारत में होने वाली कुल मौतों में लगभग 63 प्रतिशत मौतें गैर-संचारी रोगों (एनसीडी) के कारण होती हैं। वहीं, लगभग हर चार में से एक भारतीय को 70 वर्ष की उम्र से पहले गैर-संचारी रोग

के कारण समय से पहले मृत्यु का खतरा है। इस तरह, पिछले दो दशकों से सामुदायिक चिकित्सा के विभागों में जिस महामारी विज्ञान संबंधी बदलाव की चर्चा की जाती रही है, वह अब भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था के सामने रोजमर्रा की चुनौती बन चुका है। एक ही परिवार और कई बार एक ही व्यक्ति अपने जीवन के अलग-अलग चरणों में कुपोषण और मोटापे, दोनों का सामना कर रहा है।

के कारण समय से पहले मृत्यु का खतरा है। इस तरह, पिछले दो दशकों से सामुदायिक चिकित्सा के विभागों में जिस महामारी विज्ञान संबंधी बदलाव की चर्चा की जाती रही है, वह अब भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था के सामने रोजमर्रा की चुनौती बन चुका है। एक ही परिवार और कई बार एक ही व्यक्ति अपने जीवन के अलग-अलग चरणों में कुपोषण और मोटापे, दोनों का सामना कर रहा है।

संस्थागत ढांचा

नीतिगत स्तर पर बदलाव जरूर हुए हैं, लेकिन इनके क्रियान्वयन की गति अभी इन प्रगतियों के अनुरूप नहीं है। वर्तमान में 1.85 लाख से अधिक आयुष्मान आरोग्य मंदिर, जिन्हें पहले स्वास्थ्य और आरोग्य केंद्रों के रूप में जाना जाता था, 30 वर्ष से अधिक उम्र के सभी लोगों में उच्च रक्तचाप, मधुमेह और सामान्य कैंसर की जांच करने का लक्ष्य लेकर काम कर रहे हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं की गुणवत्ता में भी सुधार हुआ है। एनक्यूएस से प्रमाणित सरकारी स्वास्थ्य संस्थानों की संख्या 2016 में केवल 10 थी, जो मई 2026 तक बढ़कर 64,671 हो गई।

नीतियों से परे पारिवारिक आदतों में बदलाव

करीब 64,180 करोड़ रुपये के बजट वाली प्रधानमंत्री आयुष्मान भारत स्वास्थ्य अवसररचना मिशन के जरिए जिला स्तर के स्वास्थ्य ढांचे को मजबूत किया जा रहा है। आयुष्मान भारत डिजिटल मिशन के तहत 70 करोड़ से अधिक स्वास्थ्य आईडी जारी की जा चुकी हैं, जबकि ई-संजीवनी के माध्यम से 46 करोड़ से अधिक टेली-कंसल्टेशन (टेलीफोन पर परामर्श) किए जा चुके हैं। हालांकि, इन सभी प्रयासों का लोगों के स्वास्थ्य और कल्याण पर प्रभाव तब तक सीमित रहेगा, जब तक इसके पीछे प्रभावी और साक्ष्य-आधारित कार्यान्वयन-विज्ञान का मजबूत आधार नहीं होगा। एनीमिया

दोहरा बोझ: एक तरफ कुपोषण, दूसरी तरफ मोटापा

भारत में एकीकृत बाल विकास सेवाओं के तहत आंगनवाड़ी केंद्रों का नेटवर्क वर्ष 1975 से लगातार काम कर रहा है और जीवन के पहले 1,000 दिनों की इस महत्वपूर्ण अवधि में पोषण, स्वास्थ्य और विकास संबंधी सेवाएं पहुंचाने का देश का सबसे व्यापक माध्यम बना हुआ है। हालांकि, एनएफएचएस-6 में हाल में दर्ज सुधारों से पहले, आंगनवाड़ी व्यवस्था का बच्चों में बौनेपन की समस्या पर प्रभाव, किए गए निवेश के स्तर की तुलना में अपेक्षाकृत सीमित रहा है। आज के समय में केवल पोषण पर केंद्रित योजनाएं ही परिवार की आय, स्वच्छता, मातृ शिक्षा और स्वास्थ्य तथा रोजगार जैसे पोषण को प्रभावित करने वाले कारकों की भरपाई नहीं कर सकतीं। ये कारक यह तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं कि बच्चा लंबे समय तक रहने वाले कुपोषण से बच पाएगा या नहीं। उदाहरण के लिए, जिस बच्चे की मां ने औपचारिक स्कूली शिक्षा नहीं ली है, उसके बौनेपन से प्रभावित होने की संभावना उच्च शिक्षा प्राप्त मां के बच्चे की तुलना में लगभग दोगुनी होती है। बाजरा और अन्य टिकाऊ तथा बहु-पोषक फसलों को बढ़ावा देना निश्चित रूप से एक सकारात्मक कदम है। लेकिन यह परिवार-केंद्रित रणनीति का केवल एक हिस्सा है, इसका पूरा विकल्प नहीं हो सकता।

अभियान में टी3 से टी4 रणनीति अपनाना और एनीमिया के बारे में पर्याप्त आंकड़ों का उपलब्ध न होना इस बात को दर्शाता है कि संस्थागत स्तर पर अभी और गंभीरता से काम करने की ज़रूरत है। इन व्यवस्थाओं की नियमित और कड़ी निगरानी होनी चाहिए और इन्हें केवल घोषणाओं तक सीमित रखने के बजाय मानक संचालन प्रक्रिया के रूप में लागू किया जाना चाहिए।

अंततः व्यवहार में बदलाव लाने के लिए अभियान में जनभागीदारी पर दिया गया जोर संस्थागत व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कोई भी डिजिटल डैशबोर्ड उस परिवार की जगह नहीं ले सकता, जो अपनी बेटी को आयरन से भरपूर भोजन देता है या पहले 1,000 दिनों के दौरान अपने बच्चे को उचित पोषण, विकास के लिए ज़रूरी गतिविधियां और देखभाल उपलब्ध कराता है।

2055 का लाभांश और आगे की राह

कोई भी बाहरी पहल परिवार के स्तर पर अपनाई जाने वाली इन आदतों का पूरी तरह विकल्प नहीं बन सकती। इसलिए, सुधारों के अगले चरण में आंगनवाड़ी और आयुष्मान आरोग्य मंदिर के बीच बेहतर समन्वय, आशा कार्यकर्ताओं के घर-घर जाकर किए जाने वाले दौरों और ब्लॉक स्तर के गैर-संचारी रोगों की जांच के रिकॉर्ड के बीच बेहतर तालमेल तथा ग्रामीण आजीविका मिशनों और उनके सहयोग से चलने वाले परिवारों की पोषण सुरक्षा के बीच मज़बूत संबंध स्थापित करने की ज़रूरत है। भारत को अपनी युवा आबादी का लाभ इस सदी के मध्य यानी 2055 तक ही उपलब्ध है। यह अवसर

पूरी तरह हासिल होगा या व्यर्थ चला जाएगा, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि देश की संस्थागत व्यवस्था कितनी प्रभावी ढंग से योजनाओं को मापने योग्य, वास्तविक रूप से अपनाए गए और लंबे समय तक कायम रहने वाले परिणामों में बदल पाती है। फिलहाल, यही वह महत्वपूर्ण बदलाव है, जो सामुदायिक चिकित्सा के मौजूदा दौर में रोकथाम और पूरी आबादी के स्वास्थ्य तथा कल्याण के बीच की दूरी को कम करने की कोशिश कर रहा है।

कुपोषण पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलने वाली समस्या है। इसलिए, तमाम प्रयासों के बावजूद, जब तक हम योजनाओं और कार्यक्रमों को पूरी गंभीरता और प्रभावी ढंग से लागू करने के साथ जीवन के हर चरण में पोषण पर ध्यान नहीं देंगे, तब तक अपने लक्ष्य को हासिल करना मुश्किल होगा। सरकार की मज़बूत नीतियों और कार्यक्रमों को बड़े स्तर पर एकीकृत और लगातार प्रभावी ढंग से लागू करना, किशोरियों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं तथा बच्चों पर विशेष ध्यान देना, शिशु एवं छोटे बच्चों के आहार की उचित व्यवस्था सुनिश्चित करना, बालिका शिक्षा कार्यक्रम, स्कूल स्वास्थ्य कार्यक्रम और मध्याह्न भोजन योजना को प्रभावी बनाना तथा समुदाय और परिवार को केंद्र में रखकर व्यवहार परिवर्तन जागरूकता अभियान को प्राथमिकता देना कुपोषण के खिलाफ लड़ाई में बड़ा बदलाव ला सकता है। इन प्रयासों से भारत में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चले आ रहे कुपोषण की समस्या को कम करने में काफी मदद मिल सकती है। □

(सह-लेखक: सिद्धार्थ कुमार, ओपी ज़िंदल ग्लोबल यूनिवर्सिटी में सार्वजनिक स्वास्थ्य और मानव विकास के पीएचडी शोधार्थी।)

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड	110003	011-24367260
पुणे	ग्राउंड फ्लोर, कैरियर बिल्डिंग, महादाजी शिंदे, बीएसएनएल, टीई कंपाउंड, क्लब के पास, कैप	411001	
कोलकाता	8, एस्प्लेनेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए' विंग, राजाजी भवन, बेसेंट नगर	600090	044-24917673
तिरुवनंतपुरम	प्रेस रोड, गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं. 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवाड़ीगुड़ा, सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बेंगलुरु	फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2675823
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-एच, अलीगंज	226024	0522-2325455
गुजरात	4-सी, नेप्च्यून टावर, चौथी मंजिल, आश्रम रोड, अहमदाबाद	380009	079-26588669
गुवाहाटी	दूरदर्शन कैम्पस, आर जी बरूआ रोड, कामरूप मेट्रोपोलिटन, असम	781024	9101982938